तीर्थंकर महावीर का जीवन-दर्शन

✍ डॉ. देवेन्द्र कुमार शास्त्री

भारतीय आर्य-भूमि के पूर्वीय अंचल में मगध प्रदेश में वैशाली के उपनगर में कुण्डपुर के राजा सिद्धार्थ और माता त्रिशला के यहाँ चैत सुदी तेरस के दिन महावीर का जन्म हुआ था। आधुनिक काल-गणना के अनुसार यह तिथि 27 मार्च, सोमवार, ई.पू. 599 थी। उन दिनों वैशाली विदेह की राजधानी थी, जो गण्डक नदी के परिसर में अवस्थित थी। वैशाली एक विशाल नगरी थी, जो कई मार्गों में तथा मुहल्लों में विभक्त थी। उनमें कुण्डग्राम और वाणिज्यग्राम अत्यन्त प्रसिद्ध थे। इसके उत्तर भाग में क्षत्रिय रहते थे और दक्षिण भाग में ब्राह्मण। वैशाली नगरी में उन दिनों एक लाख साठ हजार क्षत्रिय निवास करते थे। नगरी सभी प्रकार से शोभा-सम्पन्न थी। इस नगरी के प्राकार को तीन बार विशाल बनाने के कारण इसका नाम वैशाली प्रचलित हुआ। वर्तमान में बिहार प्रान्त के मुजफ्फरपुर जिले के उपविभाग में अवस्थित 'बसाढ़' मानी जाती है। यह आज भी गण्डक नदी के पूर्व में है। कुण्डग्राम को आजकल वासुकुण्ड कहते हैं। मुंगेर से पचास मील दक्षिण की ओर एक जमुई गाँव है। बिवल स्टेशन से जमुई गाँव 18-19 मील है। जमुई से चार मील उत्तर की ओर क्षत्रियकुण्ड है, जिसे वासुकुण्ड कहते हैं। बसाढ़ की खुदाई में जो सिक्के और मिट्टी की सीलें मिली हैं, वे ई.पू. लगभग तीसरी शताब्दी की कही जाती हैं। सिक्कों पर उल्लेख है—"वसुकुण्डे जन्मे वैशालिये महावीरे।" बसाढ़ भूमि अभी तक 'अहल्य' है, इस भूमि पर कभी हल नहीं चलाया गया। कुछ पर्व के दिनों में महावीर के वंशज इस भूमि पर आकर सन्ध्या समय में घी के दीपक प्रज्वलित करते रहे हैं। वैशाली का एक भाग वासुकुण्ड और दूसरा बानियग्राम कहा जाता था।

कुण्डपुर के राजा का नाम सिद्धार्थ था। सिद्धार्थ काश्यपगोत्रीय ज्ञातृक्षत्रिय थे। कुण्डपुर में लगभग पाँच सौ घर ज्ञातृक्षत्रियों के थे। ज्ञातृ लिच्छवियों की एक शाखा कही गई है। आज इस वंश के लोग "जथरिया" कहे जाते हैं। वैशाली के आसपास और मुजफ्फरपुर जिले के रत्ती परगना में आज भी ये बसे हुए हैं। इनका

गोत्र भी काश्यप है। ये लोग तीर्थंकर पार्श्वनाथ के अनुयायी कहे जाते हैं। भारत के पूर्वी प्रदेश में यह जाति यत्र-तत्र फैली हुई है।

सांस्कृतिक इतिहास

मगध का सांस्कृतिक इतिहास इस बात का साक्ष्य है कि सुदूर अतीत काल से ही यहाँ के क्षत्रिय सम्राट् न केवल राज्य-संचालन में दक्ष थे, वरन् आत्मानुशासन करने और आत्मज्ञान के प्रसारण में भी विचक्षण थे। याज्ञवल्क्य के समय में देश में कई राजा आत्मविद्या के शिक्षक थे। विदेह के राजा जनक, काशी के अजातशत्रु, पांचाल देश के प्रवहण जयवलि अथवा अश्वपति कैकय आत्मविद्या के नेता थे। भगवान महावीर के समय में मगध के सिंहासन पर शिशुनागवंशी राजा बिम्बिसार उपनाम श्रेणिक विराजमान थे। उस समय वैशाली के राजा चेटक थे। सिन्धु—सौवीर के राजा उदयन, अवन्ती के राजा प्रद्योत, कौशाम्बी के राजा शतानीक, चम्पा के राजा दधिवाहन और मगध-सम्राट् बिम्बिसार मानवतावादी परम्परा के पोषक चेटक के जामाता थे। महावीर की माता त्रिशला चेटक नरेश की बहिन थी। वे वाशिष्ठ गोत्र की थीं। उनके तीन नाम थे—त्रिशला, विदेहदिन्ना और प्रियकारिणी। मगध सम्राट बिम्बिसार के पुत्र अजातशत्रु की माता 'चेलना' लिच्छवि वंश के अधिपति चेटक की राजकन्या थी। हैहयवंशी वैशाली के राजा चेटक की अलग-अलग रानियों से सात पुत्रियाँ उत्पन्न हुई थीं। उनके नाम हैं—प्रभावती, पद्मावती, मृगावती, शिबा, जेष्ठा, सुजेष्ठा और चेलना। इनमें से प्रभावती का विवाह सिन्धु-सौवीर के राजा उदायन, मृगावती का कौशांबी के राजा शतानीक, शिबा का उज्जयिनी के राजा प्रद्योत, पद्मावती का चम्पा के राजा दधिवाहन के साथ और जेष्ठा का कुण्डग्रामवासी वर्द्धमान के ज्येष्ठ भ्राता नन्दिवर्धन के साथ हुआ था। सुजेष्ठा और चेलना तब तक कुंवारी थीं।

प्राचीन विदेह जनपद के अन्तर्गत वैशाली एक शक्तिशाली वज्जिगण संघ की प्रधान राजधानी थी। उस युग में वैशाली की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैली हुई थी। रामायण और पुराणों में उसका विशद वर्णन मिलता है। वह अपने वैभव में सर्वोच्च शिखर पर थी। मिथिला की मानो चिरसंचित समृद्धि वैशाली में ही केन्द्रित हो गयी थी। देश-देशान्तरों में उसके व्यापारिक तथा राजनयिक सम्बन्ध थे। मगध के सीमावर्ती कई गणराज्यों ने मिलकर वज्जिसंघ की स्थापना की थी। इस संघ की प्रबलता का प्रमाण यह है कि तत्कालीन नृपति संघ के विभिन्न गणों में विवाह सम्बन्ध स्थापित कर एक महासंघ में सम्मिलित हो रहे थे। इससे उसकी लोकप्रियता का पता चलता है। बिम्बिसार की रानी वासवी विदेहकुमारी थी। शाक्य शुद्धोदन की माया और महामाया पत्नियाँ लिच्छवि थीं। कौशलराज

प्रसेनजित् की पत्नी शाक्यकन्या थी। इसी प्रकार अन्य राजा-रानियाँ लिच्छवि वंश की थीं। बौद्ध साहित्य में लिच्छवियों की बहुत प्रशंसा की गयी है। महात्मा बुद्ध ने भी उनके गुणों की प्रशंसा की थी। लिच्छवियों में सबसे अधिक प्रभावशाली चेटक थे, जो महावीर के मामा थे। लिच्छवि और वज्जिगण वाले भगवान पार्श्वनाथ के मतानुयायी थे। महावीर का जन्म 'पार्श्वापत्य' की परम्परा में हुआ था।

एक क्रान्तिदर्शी व्यक्तित्व

महावीर के ही युग में चीन में लाओत्से और कनफ्यूशियस, ग्रीक में पेरामिन्डसे और इम्पेडोलस, ईरान में जरथुस्त्र और भारत में गौतम बुद्ध मानव-धर्म तथा संस्कृति के महान् प्रचारक व प्रसारक हुए। सबका अपना-अपना चिन्तन, अनुभव और प्रयोग था। सभी परमतत्त्व या सत्य की खोज में सब कुछ त्यागकर वैराग्य की ओर अग्रसर हुए थे। सबके मार्ग भिन्न-भिन्न होने पर लक्ष्य एक था। किन्तु लक्ष्य की परिभाषा और केन्द्रबिन्दु एक नहीं था। सबकी पहुँच अलग-अलग थी। इतना होने पर भी यह एक महान् आश्चर्य की बात है कि उस समय के सभी महापुरुषों ने "मनुष्य की सत्ता सर्वोच्च है" का उद्घोष किया। ध्यान-गीता में उल्लेख है— "सब प्राणी मूलतः बुद्ध हैं। वे बरफ और जल के समान हैं। जैसे जल के बिना बरफ नहीं हो सकती, उसी प्रकार प्राणियों से बाहर बुद्ध नहीं हो सकते।" इसी प्रकार से यह भी कहा जाता है कि प्रत्येक जीव की मुक्ति का अपना अलग मार्ग है, इसलिए एक-दूसरे के मार्ग में न तो हस्तक्षेप करना चाहिए और न विरोध। लाओत्से का कथन स्पष्ट है। वह केवल एक ही सूत्र कहता है कि यह सारा जगत् द्वन्द्व से निर्मित है। अच्छा और बुरा, सुख और दुःख, राग और द्वेष, आत्मा और परमात्मा सभी शब्दों के द्वैत में द्वन्द्व है। प्रत्येक जीव की मुक्ति का अपना अलग मार्ग है, इसलिए एक-दूसरे के मार्ग में न तो हस्तक्षेप करना चाहिए और न विरोध। अपने शब्दों को समाप्त करो, अपने विचारों को खाली करो, तब शायद तुम इस एक सार को पहचान सकोगे। किन्तु भगवान महावीर इसमें उलझे नहीं। उन्होंने सहजता से स्वानुभव से बताया कि हमें दो दिखलाई पड़ते हैं। और दोनों भिन्न-भिन्न हैं, इसलिए दो मानकर चलना चाहिए। जब हमारी शुद्ध आत्मानुभूति में केवल एक रह जाएगा, तब हम स्वयं जान लेंगे कि वह परम तत्त्व एक तथा अनिर्वचनीय है। अतएव वह शब्द का विषय नहीं होगा।

भगवान महावीर, लाओत्से और बुद्ध नैतिकता से धर्म को अलग कर शुद्ध स्वभाव के रूप में उसका प्रतिपादन करते हैं। लाओत्से और बुद्ध नैतिकता से धर्म को अलग कर शुद्ध स्वभाव के रूप में उसका प्रतिपादन करते हैं। लाओत्से यदि भलाई और बुराई को एक बताता है, तो तीर्थंकर महावीर शुभ और अशुभ दोनों

प्रकार के भावों को संसार का कारण बताते हैं। उनके अनुसार जब हमारी शुद्धात्मानुभूति में केवल एक रह जाएगा, तो हम स्वयं जान लेंगे कि वह एक है। इसलिए वह शब्द का विषय नहीं है, अनिर्वचनीय तत्त्व है। भगवान महावीर शुद्धात्मा को ही परम्परा कहते हैं और संसार के सभी पेड़-पौधों में, वनस्पतियों में, जल आदि में उस आत्मा का निवास बताते हैं, पशु-पक्षी, मनुष्यादि में भी समान रूप से व्याप्त है। उस शुद्ध आत्मा की स्वाभाविक दशा का नाम ही धर्म है। आत्मा अपनी स्वाभाविक दशा के अतिरिक्त और क्या धारण कर सकता है? जो धारण किया जाता है, वह धर्म है। इसी स्थिति को लाओत्से इन शब्दों में व्यक्त करता है कि यदि मनुष्य अपने स्वभाव में भलीभाँति प्रतिष्ठित हो जाए, तो न वहाँ भलाई होगी और न बुराई। इस द्वन्द्वातीत अवस्था का नाम धर्म है। इस दृष्टि से महावीर और लाओत्से दोनों युगान्तकारी थे। दोनों ने एक शुद्ध दार्शनिक की भाँति अपने जीवन को देखा, समझा और पढ़ा था। किन्तु महावीर का व्यक्तित्व इतना ही न था, जगत् और जीवन की सघन अनुभूतियों की गहराइयों में उतरकर वे वहीं स्थित नहीं रहे, वरन् सबको लाँघ गए, यह विलक्षणता सभी महापुरुषों से महावीर में निराली थी।

बचपन

महावीर का बचपन साधारण नहीं था। यद्यपि उनका कुमार एवं बाल जीवन अनेक वैभवों से परिपूर्ण राज-प्रासाद में व्यतीत हुआ था, किन्तु वे सभी कलाओं में कुशल तथा आध्यात्मिक जागरण से सम्पन्न थे। उनकी विवेक-बुद्धि से बड़े-बड़े सन्तों का सन्देह भी दूर हो जाता था। लगभग आठ वर्ष की अवस्था में ही विद्याध्ययन-काल में उन्होंने अपनी असाधारण बुद्धि का परिचय देकर सभी को आश्चर्यचकित कर दिया था। उन्होंने आठ वर्ष की अल्प अवस्था में ही बिना किसी की प्रेरणा के स्वयं उदबुद्ध हो आत्मशुद्धि की दिशा में संयम की साधना हेतु अहिंसा, सत्य, अचौर्य और सीमित परिग्रह—इन अणुव्रतों को धारण किया था। उनके असाधारण ज्ञान की महिमा सुनकर एक बार संजय और विजय नाम के चारण ऋद्धिधारी मुनि पास में आए। दर्शन मात्र से उनका सन्देह दूर गया। इसलिए उन्होंने भक्ति-भाव से कहा कि यह बालक 'सन्मति' है। तभी से उनका नाम 'सन्मति' हो गया। इसी प्रकार से एक बार संगम देव उनकी परीक्षा करने के लिए आया। उसने देखा कि बालक वर्द्धमान समवयस्क अनेक राजकुमारों के साथ बगीचे में पेड़ पर चढ़े हुए खेल-खेल रहे हैं। संगम देव ने उनको डराने की इच्छा से एक बड़े सांप को देखते ही डर के मारे भाग गए किन्तु महावीर ने निर्भय होकर उसकी पीठ पर पांव रख दिया। कुमार की इस निर्भय क्रीड़ा को देखकर

संगम देव ने प्रसन्न हो उनकी स्तुति की और 'महावीर' नाम दिया। वह बालक वर्द्धमान को अपने कन्धे पर बिठा कर हर्ष में विभोर हो नृत्य करने लगा। यह कौतुक देखकर कुमार के तीनों साथी चलधर, पक्षधर और काकाघर भी उसके साथ क्रीड़ा करने लगे। तभी से उनका महावीर नाम प्रचलित हो गया।

एक बार कुण्डपुर में एक विशाल मदोन्मत्त हाथी गजशाला से छूटकर भाग निकला। उसे देखकर जनता भय से त्रस्त हो गई। बालक वर्द्धमान अपने साथियों के साथ जिस स्थान पर खेल रहे थे, मतवाला हाथी उधर ही झपटकर जा पहुँचा। उस विकराल हाथी को दूर से ही देखकर सब बालक भय से कांपते हुए इधर-उधर भाग गए, किन्तु वर्द्धमान ने निर्भय हो कठोर शब्दों में हाथी को ललकारा। उस ललकार को सुनकर हाथी निस्तब्ध हो गया, भय से उसका मद सूख गया। बालक वर्द्धमान ने उसके मस्तक पर आरूढ़ हो अपनी वज्र-मुष्टियों के प्रहार से उसे निर्मद कर दिया। घर-घर में बालक वर्द्धमान की वीरता की प्रशंसा होने लगी। उस दिन से उनका 'वीर' नाम प्रसिद्ध हो गया।

युवावस्था

वृद्धिमान अवस्था के अनुसार कुमार वर्द्धमान के अंग-प्रत्यंगों में यौवन झांकने लगा। सुडौल एवं सुकुमार अंगों में लक्षण तथा दीप्तिमान कान्ति चारों ओर विकीर्ण होने लगी। ऐसा प्रतीत होने लगा मानो साक्षात् कामदेव ने ही रूप धारण किया है। संतप्त स्वर्ण की कुन्दन प्रभा के समान देदीप्यमान सौन्दर्य अग-जग को मोहित करने लगा। सभी उनके रूप-सौन्दर्य से मुग्ध होने लगे। अतएव राजा सिद्धार्थ ने कुमार को पाणिग्रहण के योग्य जानकर राजाओं से चर्चा की। कुमार के असाधारण ज्ञान, बल, तेज, पराक्रम तथा असीम सौन्दर्य की वार्त्ता चर्चा का विषय बन चुकी थी। अनेक राजाओं की ओर से महावीर के पाणिग्रहण हेतु प्रस्ताव आने लगे थे। उन सभी राजकुमारियों में त्रिशला रानी और सिद्धार्थ कलिंगनरेश जितशत्रु की अनिन्द्य सुन्दरी तथा सर्वगुण सम्पन्न बाला यशोदा के साथ कुमार का विवाह करने के लिए उपक्रम करने लगे। परन्तु कुमार का मन सांसारिक बन्धनों में नहीं बंधना चाहता था। इसलिए माता-पिता के बहुत कुछ समझाने पर भी वर्द्धमान किसी भी प्रकार से विवाह करने के लिए उद्यत नहीं हुए। उनके मन में सहसा एक वैचारिक क्रान्ति उत्पन्न हो गई। उन्होंने विचार किया कि मनुष्य जन्म भर इन्द्रियों की विषय-वासनाओं में लिप्त रहकर अपनी सम्पूर्ण आयु उसी प्रकार खो देता है, जिस प्रकार मकड़ी स्वयं ही अपना जाला बुनकर उसमें फंस जाती है। इन्द्रिय-भोगों से कभी मनुष्य की वासनाओं का शमन नहीं होता, प्रत्युत अग्नि में घी के समान ज्यों-ज्यों विषय-सामग्री के साधन वृद्धिंगत होते जाते हैं, त्यों-त्यों भोगों की लालसा

बढ़ती जाती है। "मैं विषय-वासनाओं का कीट बन कर संसार भोगने नहीं आया हूँ। चारों ओर फैले हुए अज्ञान, भ्रम, हिंसा तथा अत्याचार से मुक्ति पाने के लिए ही यह शरीर धारण किया है। स्वयं उस मार्ग को प्राप्त कर जीव मात्र को उस मार्ग की ओर प्रेरित करना ही मेरी जीवन-यात्रा का उद्देश्य है। एक तुच्छ क्षुद्र कामना के लिए मैं अपने जीवन-वृक्ष को विष-वेलि से संश्लिष्ट नहीं कर सकता।" ये ही कुमार वर्द्धमान के विचार थे, जो उन्होंने अधिक स्पष्टता के साथ माता-पिता के समक्ष प्रकट कर उन्हें विस्मित तथा स्तम्भित कर दिया। मुक्ति-रमा को वरने के लिए कुमार का दृढ़ संकल्प जानकर रानी त्रिशला और राजा सिद्धार्थ मौन हो गए। फिर, उन्होंने कभी कुमार के समक्ष विवाह-वार्ता नहीं की।[1]

अभिनिष्क्रमण

परिवार के सब लोगों से विदा होकर वर्द्धमान सीधे ज्ञातृखण्ड वन में जा पहुँचे। मंगसिर वदी दशमी का दिन था। निर्मल चन्द्रमा हस्त और उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र के मध्य में था। सन्ध्या के समय में एक बड़ी शिला पर उत्तर की ओर मुख कर महावीर ने प्रथम छह दिन का उपवास का नियम लिया, फिर संयम धारण कर लिया। सभी वस्त्राभूषणों को उतारकर वे सहज एवं स्वाभाविक अवस्था को प्राप्त हो गए। निर्ग्रन्थ, नग्न, श्रमण वेश को धारण करते ही 'नमः सिद्धेभ्यः' के निनाद से जीवन-पंकज विकसित हो गया। फिर, वे सतत ध्यान में निमग्न रहे।

महावीर के अभिनिष्क्रमण के संवाद को सुनते ही यशोदा का विचार-प्रवाह वेग से परिवर्तित हो चला। भोगों में आसक्ति रखने वाला उसका मन अप्रतिम सौन्दर्य तथा रूप का पिपासु वासनाओं के उद्दाम वेग को लांघकर प्रियतम के चरणों का अनुगामी बन गया। विचार-धारा के बदलते ही जीवन-धारा भी परिवर्तित हो गई। फिर क्या था? यशोदा ने भी दीक्षा धारण कर ली। यशोदा जिस पर्वत पर दीर्घकाल तक तपस्या करती रही और जहाँ पर शरीर त्याग कर स्वर्ग गई थी, वह स्थान 'कुमारी पर्वत' के नाम से प्रसिद्ध रहा है। खारवेल के शिलालेख में पंक्ति चौदह में यह स्पष्ट उल्लेख मिलता है। ग्रह-स्थिति के अनुसार भी यह पता चलता है कि वर्द्धमान आजीवन ब्रह्मचारी रहे। क्योंकि जन्म-पत्रिका में सप्तम गृह में दो पाप ग्रहों के मध्य राहु के अवस्थित होने से पत्नी का अभाव सिद्ध होता है। आवश्यक निर्युक्ति (221-222) से भी समर्थन मिलता है कि महावीर ने कुमार-काल में ही प्रव्रज्या धारण की थी।

तपस्या

मन, वाणी और शरीर के व्यापार का निरोध कर महावीर आत्म-साधना में स्थित हो गए। कई दिनों तक लगातार वे एक ही आसन में बैठे या खड़े हुए

दिखलाई पड़ते थे। कभी कोई उन्हें सोता हुआ नहीं देख पाता। वे निरन्तर मौन रहते। न कहीं भोजन के लिए, न मल-मूत्र विसर्जन के लिए और न किसी आकुलता का निवारण करने के लिए कभी चंचल होते; सदा आत्म रूप में स्थिर एवं अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग में लीन रहते। लोगों को पता ही नहीं चलता कि महावीर यहाँ है या नहीं? वे किसी अचल पर्वत की भाँति निश्चल मुद्रा में दिखाई देते थे। उनके ऊपर तपती हुई धूप, लू, गर्मी, बरसात, ठंड आदि का कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। वे ग्रीष्मकाल में पर्वतों के ऊपर, वर्षा के दिनों में सघन वृक्षों के तले और शीतकाल में नदी के किनारे अविचल हो तप-साधना में निरत रहते। कभी-कभी तो एक-एक मास तक की समाधि लग जाती थी। वे अपने स्थान पर हिलते-डुलते तक नहीं थे। आहार-पानी की बात तो दूर रही। कई बार वन-पशु आकर वहाँ सरल, सौम्य तथा करुण मूर्ति देखकर परस्पर का बैर-विरोध भूलकर उनका साहचर्य प्राप्त कर हर्ष से क्रीड़ा किया करते। महावीर की तपस्या का यह काल 12 वर्ष, 5 मास और 15 दिन कहा गया है।

कैवल्य-प्राप्ति

एक बार जगद्बन्धु भगवान वर्द्धमान बिहार करते हुए विहार प्रान्त में जृम्भिक ग्राम के निकटवर्ती वन में जा पहुँचे। वन के पार्श्व ऋजुकूला नदी का सुन्दर तट था। नदी के कूल पर मनोहर नामक वन के मध्य में एक बड़ी शिला पर शाल वृक्ष के नीचे बेला (दो दिन के उपवास) का नियम लेकर प्रतिमा योग में विराजमान हो गए। यह वही स्थान है जो वर्तमान मुंगेर से दक्षिण और पचास मील की दूरी पर जमुई गाँव के नाम से जाना जाता है। ऋजुकूला वर्तमान में क्विल नदी है। क्विल स्टेशन से जमुई गाँव लगभग उन्नीस मील है। जमुई से चार मील उत्तर की ओर क्षत्रिय-कुण्ड और काकली स्थान है। इन स्थानों की प्राचीनता आज भी प्रसिद्ध है। जमुई से तीन मील दक्षिण की ओर एनमेगढ़ नामक एक प्राचीन टीला है। कनिंघम ने इसे राजा इन्द्रद्युम्नपाल द्वारा निर्मित बताया है। यहाँ पर खुदाई में मिट्टी की अनेक मुद्राएँ प्राप्त हुई हैं। वर्षाकाल में अधिक पानी बरसने पर यहाँ अपने आप ही अनेक मनोज्ञ मूर्तियाँ निकलती हैं।

बैसाख सुदी दशमी का दिन था। अपराह्न काल में वर्द्धमान भगवान् के परिणामों की विशुद्धता उत्तरोत्तर वृद्धिंगत हो रही थी। हस्त और उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र के मध्य चन्द्र विद्यमान था। ध्यान की चरम स्थिति में निरन्तर शुक्लता को प्राप्त करते हुए भगवान महावीर विशुद्ध परमतत्त्व को उपलब्ध हो गए। भगवान महावीर को कैवल्य की प्राप्ति हो गई। निर्ग्रन्थ केवली होने पर धीरे-धीरे छियासठ दिन बीत गए, किन्तु तीर्थंकर महावीर का उपदेश नहीं हुआ। अन्त में इन्द्रभूति गौतम का किसी प्रकार जीवात्मा के सम्बन्ध में शंका लेकर आगमन हुआ, तभी

भगवान महावीर की दिव्य ध्वनि का क्षरण हुआ। भगवान महावीर का केवलिकाल 29 वर्ष, 5 मास और 20 दिन का कहा गया है। अन्त में दो दिन के समय में योग-निरोध कर कार्तिक कृ. 30 मंगलवार, स्वाति नक्षत्र में तदनुसार 15 अक्तूबर, 527 ई.पू. में तीर्थंकर महावीर ने निर्वाण-पद प्राप्त कर सिद्धत्व लाभ किया।

भगवान महावीर ने जब 43वें वर्ष में तीर्थंकर पद की प्राप्ति की थी, उस समय महात्मा गौतम बुद्ध को अट्ठाईसवाँ वर्ष चल रहा था। राजगृह में एक बार बुद्ध और महावीर का परस्पर मिलन हुआ था। गौतम बुद्ध ने महावीर से प्रभावित होकर ध्यान-तपश्चर्या आदि में कठोर संयम की साधना की थी, किन्तु अन्त में 'मध्यमा प्रतिपदा' का मार्ग अंगीकार कर लिया था।

विहार क्षेत्र

कैवल्योपलब्धि के अन्तर तीर्थंकर महावीर ने ई.पू. 557 में श्रावण कृष्ण प्रतिपदा के दिन मगध देश की राजधानी राजगृही में विपुलाचल पर प्रथम धर्मोपदेश दिया था। लगभग तीस वर्षों तक पद-यात्रा करते हुए वे अपनी मंगल वाणी से देश-देशान्तरों की जनता को धर्मोपदेश देकर आप्यायित करते रहे।

विश्वव्यापी प्रभाव

580 ई.पू. में उत्पन्न यूनानी दार्शनिक विद्वान् पेथागोरस ने भगवान महावीर के सिद्धान्तों से प्रभावित होकर अपने देशवासियों की पुनर्जन्म एवं धर्म सिद्धान्त की शिक्षा दी थी और उन्हें बताया था कि वनस्पति में भी जीव होते हैं, इसलिए हिंसा और मांसाहार से दूर रहना चाहिए। फिलिस्तीन के महात्मा मूसा के जीवन पर भगवान महावीर की शिक्षाओं का प्रभाव कहा जाता है। यूनान के राजा डेमेट्रियस तीर्थंकर महावीर के अत्यन्त भक्त थे। उन्होंने आत्मध्यान के लिए भगवान महावीर की मूर्ति की स्थापना अपने यहाँ की थी। यूनान, इटली तथा नार्वे में जैनसंघ गए थे। वहाँ पर भगवान महावीर की शिक्षाओं का प्रचार था। पुराने लेखों से पता चलता है कि पश्चिमी एशिया, यूनान, मिस्र और इथियोपिया के पर्वतों तथा वनों में उन दिनों हजारों जैन मुनि स्थान-स्थान पर थे और साधु-जीवन बिताते हुए अपने त्याग तथा विद्या के लिए वहाँ प्रसिद्ध थे।

इतिहास के प्रसिद्ध लेखक जी.एफ. मूर के अनुसार ईसा के जन्म की शताब्दी के पूर्व इराक, स्याम और फिलिस्तीन में जैन मुनि और बौद्ध भिक्षु सैकड़ों की संख्या में चारों ओर फैले हुए थे। उन साधुओं ने वस्त्र तक का त्याग कर दिया था। मिस्र में उन तपस्वियों को 'थेरापूते' कहा जाता था। 'थेरापूते' का अर्थ है– मौनी व अपरिग्रही। मेजर जनरल जे.बी.आर. फर्लांग ने बताया है कि ओकसियना, केस्पिया, बल्ख और समरकंद में जैनधर्म के केन्द्र थे। इसी प्रकार से यह भी कहा

जाता है कि अफ़गानिस्तान, इथोपिया, अमेरिका, अरब, बर्मा, मध्य एशिया, लंका, चीन, मिस्र, इंगलैंड, फ्रांस, जर्मनी, आस्ट्रेलिया, यूनान, इण्डोनेशिया, जावा, ईरान, जापान, नीदरलैंड और तिब्बत आदि देश-देशान्तरों में समय-समय पर भगवान महावीर के उपदेश व सिद्धान्तों का प्रचार तथा प्रसार होता रहा है। भगवान पार्श्वनाथ के समकालीन यूनान के प्रसिद्ध सन्त ओरफियस थे, जो उनसे प्रभावित थे। मिस्र के थेरापूत सम्प्रदाय पर भी उनका प्रभाव था। सिन्ध के ठट्ठा नगर का सरमद जो जातीय यहूदी और राष्ट्रीय ईरानी था, अपरिग्रह व अहिंसा आदि का प्रचार करता हुआ सिन्ध से दिल्ली आया था। लोग उसे बड़ी रुचि से सुनते थे। इस तरह के कुछ अन्य उल्लेख भी मिलते हैं, जिनको पढ़ने पर यह निश्चय हो जाता है कि जैनधर्म भारत से बाहर भी शताब्दियों तक जीवित रहा है।

धर्मोपदेश

तीर्थंकर महावीर का प्रथम उपदेश था—अहिंसा परम धर्म है। किसी भी प्राणी, जीव, सत्त्व का पीड़न मत करो, उनके ऊपर अपनी सत्ता मत जमाओ, उनको गुलाम मत बनाओ और किसी को मत सताओ, यही ध्रुव नित्य और शाश्वत धर्म है।

भगवान महावीर ने कहा था— लोक शाश्वत एवं अनादि, अनन्त है। यह परीत्त (असंख्येय प्रदेशात्मक) और परिवृत (अलोकाकाश से व्याप्त) है। नीचे की ओर यह विस्तृत, मध्य में संक्षिप्त तथा ऊपर के भाग में विशाल है। आकार में यह अधोभाग में पलंग जैसा, मध्य भाग में वज्र जैसा और ऊपरी भाग में ऊर्ध्वमृदंग जैसा है। निश्चय से धर्म वस्तु का स्वभाव है। वस्तु का स्वभाव ही चारित्र है। आत्मा चारित्ररूप है। वीतराग परिणाम चारित्र है। आत्मा शुद्धोपयोग स्वभावी है। शुद्धोपयोग मोह, क्षोभ से रहित आत्मा की अवस्था है।

धर्म न ग्राम में है और न अरण्य में। धर्म तो जीव, अजीव आदि सात तत्त्वों के परिज्ञान पूर्वक निरवद्य अनुष्ठान में है।

सम्यक्‌दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्‌चारित्र तीनों मिलकर मोक्ष का मार्ग है।

संसार में सुख-दुःख, इच्छा आदि हैं तो इन कार्यों का कारण भी हैं और यही है— कर्म। मनुष्य पूर्व जन्म में किए हुए अपने अच्छे-बुरे कर्मों का फल इस जन्म में प्राप्त करता है। कर्म के अनुसार ही मनुष्य का बुद्धि-व्यापार लक्षित होता है।

जीवों के द्वारा किए गए परिणामों का निमित्त पाकर भिन्न पुद्‌गल स्वयं कर्म-रूप परिणमन करते हैं।

रागी जीव कर्म को बाँधता है और वीतरागी कर्म से छूट जाता है, यही जिनेन्द्र भगवान् का उपदेश है।

मोह के साम्राज्य में कोई जीव सुखी नहीं है। अनादिकाल से यह जीव कर्म तथा सूक्ष्म-स्थूल शरीर संयोग है। इसीलिए अपने आपको भूलकर मिथ्या अहंकार

और ममकार को ही अपना समझ रहा है। किन्तु तत्त्वों में सम्यक् रुचि होते ही दृष्टि बदल जाती है और आध्यात्मिक-जागरण हो जाता है। इसे सम्यक्दर्शन कहा जाता है। सम्यक्दर्शन मोक्षमार्ग का प्रथम सोपान है।

विश्व के नाम सन्देश

तीर्थंकर महावीर एक तीर्थ के निर्माता थे। उनका यह तीर्थ जन-जन की भलाई के लिए बना था। संसार के दुखी प्राणी जिस तीर्थ का आलम्बन लेकर आनन्द लोक में पहुँच सकते हैं, उसे 'सर्वोदयी तीर्थ' का नाम दिया गया। इस सर्वोदय तीर्थ का आधार मूल इकाई स्वयं व्यक्ति है। व्यक्ति अपनी कर्ममूलक योग्यता के अनुसार छोटा-बड़ा, ऊँचा-नीचा है। इसमें किसी परिवार या वंश में जन्म लेने के कारण वर्ण-व्यवस्था को मानने का निषेध किया गया है। स्वयं भगवान् महावीर ने अपने जीवन से सिद्ध कर दिखाया कि व्यक्ति ही तीर्थ है। नर स्वयं नारायण बन सकता है। वह परम शक्ति तो प्रत्येक जीवात्मा के भीतर सुप्त है। उसे जाग्रत करने की आवश्यकता है। संसार में मनुष्य की सत्ता सर्वोच्च है। ईश्वर कुछ करने-धरने नहीं आता। वह न किसी का भला करता है और न किसी का बुरा करता है। मनुष्य ही स्वयं करने और भोगने वाला है।

इस वर्तमान भौतिकता के विकास के युग में भगवान् महावीर का विश्व के नाम यही सबसे बड़ा सन्देश है कि मनुष्य को ही नहीं, प्राणी मात्र को अपने जैसा समझो। मनुष्य का विश्वास करो। धन-सम्पत्ति के लिए मनुष्य का बलिदान मत करो। संसार के असंख्य प्राणियों को अपने ही परिवार का सदस्य समझकर उनका बराबर ध्यान रखो। केवल अपने स्वार्थों में केन्द्रित रहकर मनुष्य कभी ऊँचा नहीं उठ सकता। मनुष्य की प्रगति का सबसे बड़ा आधार है—मनुष्य के सह-अस्तित्व के साथ अहिंसा और तप का समन्वय। समाज में श्रम की प्रतिष्ठा को महत्त्व दिए बिना किसी भी देश तथा जाति का विकास नहीं हो सकता। संसार के सभी कलह तथा युद्ध का मूल कारण है परिग्रह की मनोवृत्ति (माल्कियत)। इसीलिए अहिंसा, तप, अपरिग्रह और अनेकान्त से विश्व-कल्याण हो सकता है और संसार में शान्ति स्थापित हो सकती है। एच.जी. वेल्स ने उचित ही कहा है कि आज दुनिया सम्पत्ति को सामाजिक बनाना चाहती है, लेकिन मनुष्य के स्वभाव को सामाजिक बनाने की बात उसे नहीं जँचती।

सन्दर्भ

1. श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार यशोदा के साथ उनका विवाह हो गया था, पर वे विवाहित होकर भी भोगों में आसक्त नहीं हुए।

❖❖